वन अधिकार कानून के अंतर्गत सत्यापित होने में विफल

लाखों आदिवासी जंगल से होंगे बेदखल

सर्वोच्च न्यायालय ने हालिया आदेश में कहा है कि वन भूमि पर अपने दावे को साबित करने में असफल रहे अनुसूचित जनजातियों और वनवासियों को जमीन से बेदखल किया जाये. इस आदेश का असर लगभग 21 राज्यों के 23 लाख आदिवासियों और वनवासियों पर पड़ेगा और उन्हें जमीन छोड़नी पड़ेगी. विभिन्न रिपोर्टों में फैसले से प्रभावित लोगों का आंकड़ा लगभग एक करोड़ तक बताया जा रहा है. तमाम आदिवासी संगठनों का कहना है कि मामले से संबंधित कई तथ्यों को अदालत में पेश नहीं किया गया था, इसलिए वे इस फैसले पर पुनर्विचार करने की मांग भी कर रहे हैं. इन्हीं बहसों के मद्देनजर आज का **इन दिनों**...

क्या है पूरा मामला

इसी 20 तारीख को उच्चतम न्यायालय ने लिखित आदेश जारी कर 16 राज्यों को कहा है कि वे 10 लाख से अधिक जनजातीय और वन निवासियों को 27 जुलाई से पहले जंगल से बाहर निकालें. इस आदेश के मुताबिक, जिन परिवारों के वनभूमि स्वामित्व के दावों को खारिज कर दिया गया था, उन्हें राज्यों द्वारा इस मामले की अगली सुनवाई से पहले तक बेदखल कर देना है. उच्चतम न्यायालय का यह फैसला वन अधिनियम 2006 के विरुद्ध डाली गयी याचिका के पक्ष में आया है. न्यायालय ने जिन राज्यों को यह आदेश दिया है, उनमें आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओड़िशा, राजस्थान, तमिलनाडु, तेलंगाना, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश व पश्चिम बंगाल शामिल हैं.

तेइस लाख से अधिक लोग होंगे प्रभावित

जनजातीय मामलों के मंत्रालय द्वारा एकत्रित ताजा आंकड़े (दिसंबर 2018 तक) बताते हैं कि जनजातीय व वनवासियों द्वारा दाखिल 42.19 लाख दावों में से केवल 18.89 लाख ही स्वीकार किये गये थे. इस लिहाज से देखा जाये तो उच्चतम न्यायालय के आदेश के बाद 23 लाख से अधिक जनजातीय व वनवासी परिवार इससे प्रभावित होंगे.

प्रभावित राज्यों का आंकड़ा

- झारखंड में 27,809 आदिवासी और 298 वनवासियों के दावे खारिज.
- मध्य प्रदेश के 2,04,123 आदिवासियों और 1,50,664 वनवासियों के दावे खारिज.
- ओड़िशा के 1,22,250 आदिवासियों और 26,620 वनवासियों के दावे खारिज.
- आंध्र प्रदेश की 1,14400 एकड़ जमीन से 66351 दावे खारिज.
- तेलंगाना के 82,075 आदिवासियों के दावे खारिज हुए हैं.
- त्रिपुरा के 34,483 आदिवासियों और 33,774 वनवासियों के दावे खारिज.
- पश्चिम बंगाल के 50, 288 आदिवासियों और 35,856 वनवासियों के दावे खारिज.
- महाराष्ट्र के 13,712 आदिवासियों और 8,797 वनवासियों के दावे खारिज.
- कर्नाटक के 35,521 आदिवासियों और 1,41,019 वनवासियों के दावे खारिज.
- असम के 22398 आदिवासी और 5136 पांरपरिक जंगल निवासियों के दावों को खारिज किया गया है.
- बिहार के 4354 आदिवासियों के दावों को खारिज कर दिया गया है.
- छत्तीसगढ़ के 20,095 आदिवासियों के दावों को खारिज किया गया है और 4830 पर कार्रवाई हो चुकी है.
- उत्तर प्रदेश में 20,494 आदिवासियों और 38,167 वनवासियों के दावे खारिज.
- राजस्थान में 36,492 आदिवासियों और 577 वनवासियों के दावे खारिज.
- तमिलनाडु 7,148 आदिवासियों और 1881 वनवासियों के दावे खारिज.
- केरल में 893 आदिवासियों के दावे खारिज.
- उत्तराखंड में 35 आदिवासियों और 16 वनवासियों के दावे खारिज.

सुप्रीम कोर्ट के आदेश के प्रमुख बिंदु

- आदेश के अनुसार, राज्य सरकारों के मुख्य सचिव यह सुनिश्चित करेंगे कि खारिज किये जा चुके दावेदारों को जंगल से बेदखल किये जाने की कार्रवाई मामले की अगली सुनवाई (27 जुलाई, 2019) तक पूरी हो जानी चाहिए. अदालत खुद इसका संज्ञान लेगी.
- जिन राज्यों में सत्यापन, पुनर्सत्यापन और समीक्षा की प्रक्रिया लंबित है, राज्य सरकार को आदेश की तारीख से चार महीनों के अंदर आवश्यक कदम उठाने होंगे और इसकी रिपोर्ट अदालत को सौंपनी होगी.
- फॉरेस्ट सर्वे ऑफ इंडिया को सेटेलाइट सर्वे करना होगा, जिससे अतिक्रमण के स्थानों का रिकार्ड लिया जा सके तथा उन स्थानों को भी दर्शाये जहां से आदिवासियों और वनवासियों को

बेदखल किया जा चुका है.
- मामले से संबंधित आवश्यक हलफनामे 12 जुलाई 2019 तक जमा कर दिये जाएं.

भारतीय वन अधिनियम 1927

भारतीय वन अधिनियम (1927) के तहत सरकार और वन विभाग को वनों के किसी भी क्षेत्र को रक्षित (रिजर्व्ड) व संरक्षित करने के लिए अधिसूचित करने का अधिकार है. इसी कानून के तहत रक्षित वनों को छोड़कर राज्य सरकार किसी भी वन भूमि को 'संरक्षित वन (प्रोटेक्टेड फॉरेस्ट्स)' घोषित कर सकती है. इस प्रकार इन वनों के संसाधनों के इस्तेमाल राज्य सरकार द्वारा नियंत्रित हैं. जो वन ग्रामीण समुदाय के नियंत्रण में हैं, इस कानून के तहत उन वनों को 'ग्राम वन (विलेज फॉरेस्ट)' माना गया है. वनों के संरक्षण को लेकर वर्ष 1980 तक वन अधिनयम (1927) ही चलन में था. लेकिन जब वनों की कटाई बहुत ज्यादा बढ़ गयी तो इसे रोकने के लिए इस अधिनियम में बदलाव की मांग उठने लगी. फलस्वरूप वन संरक्षण अधिनियम 1980 का मसविदा तैयार हुआ. हालांकि इससे भी अधिकांश लोग नाखुश थे और वर्ष 2005 तक यह मसविदा संसद में पेश नहीं हो सका. बाद में इसे संयुक्त संसदीय समिति के पास भेजा गया. मई 2006 में समिति की रिपोर्ट आने के बाद इस अधिनियम में अनेक संशोधन कर दिसंबर 2006 में इसे 'अनसूचित जनजाति एवं अन्य पारंपरिक वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता)' कानून नाम से पारित कर दिया गया. 1 जनवरी, 2008 से यह कानून जम्मू-कश्मीर को छोड़कर भारत के सभी राज्यों में लागू हो गया.

फैसले पर पुनर्विचार किया जाये

आदिवासियों और वनवासियों को वनभूमि से बेदखल करने का फैसला अन्यापूर्ण है. उम्मीद है कि सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले पर पुनर्विचार किया जायेगा. इसके साथ ही, आदिवासियों को भी अपनी लड़ाई लड़नी चाहिए कि उन्हें इस तरह से बेदखल न किया जाये. आदिवासियों को मूल निवासी मानते हुए मनमोहन सिंह सरकार ने वन अधिकार कानून के तहत उन्हें वनों-जंगलों में रहने का अधिकार दिया था. इसलिए आदिवासियों को बिना किसी कानूनी प्रक्रिया के जंगलों से बेदखल करना उचित नहीं है. एक जमाने से आदिवासी जंगलों में रहते आये हैं, आखिर सरकार उन्हें इस तरह कैसे हटा सकती है? कई राज्यों में उनके दादा-परदादा घर बनाकर रहते आये हैं, और अब वे रह रहे हैं. जब शहरों में शहरियों की तीसरी पीढ़ी के कागजात खोजे नहीं मिलते, तो फिर आदिवासियों के लिए ऐसी बातें क्यों कही जाती हैं, यह समझ से परे है. जबकि, वन अधिकार कानून आदिवासियों को हटाने की बात नहीं करता. कानून में दो तरह के अधिकार दर्ज हैं. उसमें सामुदायिक अधिकार की बात कही गयी है, जिसका तात्पर्य यह है कि गांव की सीमा के अंदर जल-जंगल-जमीन जो भी है, उन सब पर उनका अधिकार है, वहां की ग्रामसभा का अधिकार है. बिना ग्रामसभा की अनुमति के सरकार वहां से किसी को हटा नहीं सकती है. दूसरा है, व्यक्तिगत जमीन पर अधिकार. इन अधिकारों को सुनिश्चित करने की प्रक्रिया में राज्य सरकारें बहुत ढिलाई करती रही हैं. दरअसल, नेताओं में राजनीतिक इच्छाशक्ति ही नहीं है. हमने लड़ाई लड़कर कई आदिवासी गांवों को अधिकार दिलाये हैं, लेकिन आज भी देशभर में हजारों ऐसे गांव हैं, जिन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा गया है. इसलिए इस कानून को नकारना है, तो पहले एक लंबी प्रक्रिया का पालन करना पड़ेगा. सरकार को साबित करना होगा कि आखिर वह उन्हें क्यों हटा रही है. भाजपा कह रही है कि यह कानून ही गलत है, तो वह सबसे पहले कानून में बदलाव करे. लेकिन, फिलहाल उनमें यह हिम्मत नहीं है कि वे कानून में बदलाव करें. आदिवासियों और वनवासियों को वनभूमि से हटाने का फैसला इसलिए आया है, क्योंकि सरकार के वकील ही उनके पक्ष में खड़े नहीं हुए. आज पर्यावरण मंत्रालय एकदम खत्म-सा हो गया लगता है. पर्यावरण मंत्रालय की कोई नहीं सुनता है और वह भी कोई हस्तक्षेप नहीं करता है. साफ है कि जंगल की जमीन पर बहुत सारे लोगों की नजर है. इसलिए कभी विकास के नाम पर, तो कभी पर्यटन के नाम पर जंगलों से वनवासियों को हटाने के तरह-तरह के षड्यंत्र रचे जा रहे हैं. किसी को भी बेदखल करने के फैसले से पहले आदिवासियों की और उसके ग्रामसभाओं को सहभागी बनाया जाना चाहिए. लेकिन, ऐसा नहीं हुआ. साफ है कि जंगल की जमीनों पर विकास के नाम वाले प्रोजेक्ट को बढ़ावा देने के लिए साजिश रची जा रही है. जिन गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) ने जंगलों को कटने से बचाने के नाम पर आदिवासियों को हटाने की बात कही है, क्या उन्हें समझ नहीं है कि आदिवासियों के बेदखल होने से जंगलों की कटाई और तेज हो जायेगी और वहां प्राकृतिक संपदा का दोहन होगा? दरअसल, कोर्ट को बहुत भ्रमित किया गया है, एक तरफ यह कहकर कि आदिवासी जंगलों पर कब्जा कर उनको नुकसान पहुंचा रहे हैं, दूसरी तरफ सरकारी वकील कोर्ट में उपस्थित ही नहीं हुआ. मूलनिवासियों को कभी सुना ही नहीं गया, इसलिए इस फैसले के लिए चली पूरी प्रक्रिया विकृत की गयी लगती है. उचित होगा कि सुप्रीम कोर्ट खुद ही स्वतः संज्ञान ले, ताकि आदिवासियों को न्याय मिल सके.

मेधा पाटकर,
सामाजिक कार्यकर्ता

बातचीत : वसीम अकरम

अनसूचित जनजाति एवं अन्य पारंपरिक वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता) कानून 2006 के तहत प्रदत्त अधिकार

- वैसे लोग जिनका 13 दिसम्बर, 2005 से पहले वन भूमि पर कब्जा रहा है और वे वहां खेती कर रहे हैं, उन्हीं लोगों को भूमि का अधिकार और पट्टा मिलेगा.
- एक परिवार को अधिकतम 10 एकड़ का पट्टा मिलेगा. यह पट्टा पति-पत्नी दोनों के नाम पर होगा.
- अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को निवास या जीविका यापन के लिए व्यक्तिगत या सामूहिक वन भूमि को जोतने और उसमें रहने का अधिकार होगा.
- लघु वनोपज का संग्रहण, उसका उपयोग करने और बेचने का अधिकार.
- जंगल में मवेशी चराने का अधिकार.
- जंगल क्षेत्र में पानी, सिंचाई, मछली पालन एवं पानी से अन्य उपज प्राप्त करने का अधिकार.
- जिन वन भूमि से लोगों को असंवैधानिक तरीके से बिना पुनर्वास के हटा दिया गया हो, उस जमीन पर या दूसरी जमीन पर उन्हें अधिकार देना.
- जंगली जानवरों के शिकार को छोड़कर, वनवासियों को उनकी परंपरा को मानने का अधिकार.
- जैव विविधता तथा सांस्कृतिक विविधता से संबंधित बौद्धिक संपदा और पारम्परिक ज्ञान का सामुदायिक अधिकार.

कमजोर वर्गों का समाज के संसाधनों पर पहला हक

अनिल गर्ग,
सामाजिक कार्यकर्ता

समाज के कमजोर वर्ग का ही समाज के संसाधनों पर पहला हक होता है. यह कमजोर वर्ग इन संसाधनों द्वारा जीवनयापन करते हैं, जिसे लूटने की कोशिश की जाती है. इस अंतर्विरोध को समझना जरूरी है.

देश का दुर्भाग्य है कि जिन हाथों को अन्याय दूर करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी, वही अन्याय कर रहे हैं. वन विभाग हो, आदिम जाति कल्याण विभाग हो या राजस्व हो, तीनों विभागों ने ही इस मामले में कोई अच्छी भूमिका नहीं निभायी है. सुप्रीम कोर्ट के फैसले में लाखों आदिवासियों को बागों और जमीन के हक से अमान्य घोषित किया गया है, वह अधिकारियों की गंभीर लापरवाही का नतीजा है. उदाहरण के लिए, मध्य प्रदेश में जो वन ग्राम हैं, उन्हें राजस्व ग्राम नहीं बनाया गया और बागों को अमान्य घोषित कर दिया गया. मध्य प्रदेश सरकार ने विधानसभा में बताया था कि राज्य में 925 वन ग्राम हैं और 122 असर्वेक्षित बस्तियां हैं. इन गांवों को राजस्व ग्राम का दर्जा देने के बजाय, उनके दावेदारों को अमान्य घोषित कर दिया गया. ऐसी गलती फैसले से प्रभावित सभी राज्यों में हुई है. इससे पहले, सरकारों ने गैर-आदिवासियों के वन भूमि, बागों पर आये लाखों दावों को पहले ही अमान्य घोषित कर दिया था. इसके पीछे कारण दिया जाता रहा है कि जमीन पर गैर आदिवासियों का तीन पीढ़ियों से कब्जा नहीं है. कानून में कहीं नहीं लिखा है कि तीन पीढ़ी पहले से कब्जा होना जरूरी है. यह सारे तथ्य सुप्रीम कोर्ट के सामने नहीं रखे गये, जबकि राज्य सरकार व केंद्र सरकार की जिम्मेदारी थी कि वह इन सभी तथ्यों को सुप्रीम कोर्ट के सामने रखे. देश की सरकार ने अपना वकील ही सुप्रीम कोर्ट में खड़ा नहीं किया. वाइल्ड लाइफ ट्रस्ट वाले अदालत के सामने एकतरफा बात करके आदिवासियों की बेदखली के लिए जिरह करते रहे, और किसी ने कुछ नहीं किया. इस फैसले के बाद जो आदिवासी अपनी जमीन से बेदखल किये जाने वाले हैं, उनकी कोई आवाज सुप्रीम कोर्ट में

नहीं सुनी गयी. न्याय का सिद्धांत है कि आप मेरे खिलाफ आदेश कर रहे हो, मुझे सुनो तो. लेकिन नहीं सुना गया और आदेश कर दिया गया कि जाओ तुम्हें बेदखल करते हैं. केंद्र व राज्य सरकारों की इच्छा से, मंशा से ही आदिवासी मंत्रालय ने अपना वकील पीछे कर लिया और जिरह नहीं कराया. सरकारों के साथ जो समूह काम कर रहे हैं, उनमें वाइल्ड लाइफ जैसे ग्रुप हैं, जो विदेशों से चंदा लेते हैं और देश के पूरे सामाजिक ताने-बाने को तोड़ने में लगे हुए हैं. यह लोग सिर्फ वनों और वन्य प्राणियों को विषयवस्तु मानते हैं. दूसरी तरफ, कॉरपोरेट सेक्टर के लोग हैं, जो आदिवासियों को बेदखल करके जमीनों को हथियाना चाहते हैं. आदिवासियों के रहते तो हथियाना मुश्किल है, इसलिए यह सारा खेल रचा गया है. मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में तो वन अधिकार कानून के साल 2008 के जनवरी में लागू होने के समय से ही उसका उल्लंघन होता रहा है. पूरे देश में ऐसा नहीं हुआ कि किसी गैरवांछित उद्देश्य के लिए वन भूमि का आवंटन किया जा रहा हो और वहां रहने वाले कम से कम 50 फीसदी आदिवासियों की सहमति और प्रस्ताव लेने की जहमत उठायी गयी हो. इसे क्या माना जायेगा? मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में अब कांग्रेस की सरकार है. चुनाव के पहले उनके घोषणापत्र में था कि वन अधिकार कानून को पूरी तरह लागू किया जायेगा। लेकिन दोनों राज्य सरकारों की ओर से अभी तक कोई ऐसा पत्र नहीं आया कि वे गलतियों को सुधारने की मंशा रखते हैं. राज्यों के वन मंत्री इतने व्यस्त रहते हैं कि उनके पास लाखों आदिवासियों के बेदखल किये जाने के मुद्दे पर बात करने के लिए समय नहीं है. इस मामले में अधिकारियों से लेकर मंत्रियों, सभी ने कानून का उल्लंघन किया ही है, सिरे से आदिवासियों के अधिकारों को नजरअंदाज किया है.

वाइल्ड लाइफ ट्रस्ट जैसे एनजीओ कॉरपोरेट सेक्टर, मल्टीनेशनल कंपनियों के लिए काम करते हैं. ये सोचते हैं कि इनके हिसाब से संविधान की विवेचना की जायेगी. समाज के कमजोर वर्ग का ही समाज के संसाधनों पर पहला हक होता है. यह कमजोर वर्ग इन संसाधनों द्वारा जीवनयापन करते हैं, जिसे लूटने की कोशिश की जाती है. इस अंतर्विरोध को समझना जरूरी है. फिलहाल, उम्मीद कर रहा हूं कि देश की जनता आदिवासियों के साथ हुए अन्याय के खिलाफ आवाज उठायेगी.

बातचीत: देवेश

सर्वोच्च न्यायालय का आदेश वास्तविक दावेदारों को प्रभावित नहीं करता

याचिकाकर्ता वाइल्ड लाइफ फर्स्ट के बयान का हिस्सा

बीते 13 फरवरी 2019 को, न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा की अध्यक्षता वाली सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने वनों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए साल 2008 में दायर रिट याचिका 109 के मामले में एक अत्यंत महत्वपूर्ण आदेश जारी किया है, जो कि वन अधिकार अधिनियम (एफआरए) के तहत अयोग्य दावेदारों को बेदखल करता है. इस तरह के अयोग्य व बोगस दावेदार राष्ट्रीय उद्यानों और अभ्यारण्यों के भीतर वनों के एक विशाल क्षेत्र पर कब्जा रखते हैं, भले ही उनके दावों को सत्यापन और अपील की प्रक्रिया के बाद खारिज कर दिया गया हो. नेचर कंजर्वेशन सोसायटी, टाइगर रिसर्च एंड कंजर्वेशन ट्रस्ट के साथ वाइल्ड लाइफ फर्स्ट इस मामले में याचिकाकर्ता रहा है. इस पूरे मामले को अच्छे से समझना बहुत जरूरी है, क्योंकि सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बाद मीडिया में बहुत गलतफहमी दिखायी दे रही है. वरिष्ठ अधिवक्ता श्याम दीवान और एओआर पीके मनोहर को बड़े विस्तार से सुनने, फर्जी दावों की भयावहता और सत्यापन की कभी न खत्म होने वाली प्रक्रिया को देखते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने यह महत्वपूर्ण आदेश पारित किया है. इसमें 17 राज्यों को दिशा-निर्देश दिये गये हैं. इन राज्यों ने खारिज किये गये दावेदारों की संख्या वाले हलफनामे दायर किये थे, जिसके आधार पर 11, 91,327 दावे अयोग्य साबित हुए हैं. इस तरह, सुप्रीम कोर्ट के आदेश से वन भूमि से केवल अयोग्य दावेदार बेदखल होंगे, वहीं वास्तविक दावेदारों को कोई नुकसान नहीं होगा.